गांधी स्मारक निधि का मासिक मुखपत्र

संस्थाकुल

वार्षिक सहयोग राशि : रु. 20.00
एक प्रति : रु. 2.00
कुल पृष्ठ : 12

जनवरी, 2023 वर्ष – 53 अंक – 10

भारतीय संस्कृति

आचार्य विनोबा

प्रकृति–विकृति–संस्कृति

'संस्कृति' में क्या–क्या आता है, यह जरा समझने की जरूरत है। उसमें कितने ही अच्छे विचार और कुछ गलत विचार भी चलते हैं। जो विचार प्राचीन काल से सतत चला आया हो, वह हमेशा संस्कृति ही प्रकट करता है, सो नहीं। मनुष्य की एक प्रकृति होती है, एक संस्कृति और एक विकृति। भूख लगने पर मनुष्य खाता है यह उसकी प्रकृति है। भूख न लगने पर भी मनुष्य खाता है, यह उसकी विकृति है। और भूख लगने पर भी आज एकादशी है, इसलिए भगवत्–स्मरण के लिए नहीं खायेंगे, यह उसकी संस्कृति है। हम मेहनत करके खाते हैं, यह हमारी प्रकृति है। हम मेहनत टालेंगे, दूसरे की मेहनत लूटेंगे और भोग भोगते रहेंगे, यह हमारी विकृति है। यद्यपि यह बात बहुत–से मानवों में दीखती है, फिर भी वह मनुष्य की प्रकृति नहीं, विकृति है। चाहे इस प्रकार की विकृति प्राचीन काल से आज तक दीखती हो, फिर भी वह कभी भी संस्कृति नहीं हो सकती। लेकिन अपने श्रम से पैदा की हुई चीज भी दूसरे को दिये बिना नहीं खायेंगे, देकर ही खायेंगे, यह मानव की संस्कृति है।

वर्ष 2023 भारत राष्ट्र एवं सम्पूर्ण विश्व के लिए शांति–सद्भावमय हो, इस प्रभु–प्रार्थना के साथ आप सबको हमारी हार्दिक शुभकामनाएं! – सं.

संस्कृति कभी खराब नहीं होती, विकृति ही खराब होती है और प्रकृति को हम न खराब कह सकते हैं, न अच्छा ही। वह जैसी है, वैसी है। कौआ काला होता है, उसे हम खराब नहीं कह सकते, क्योंकि वह उसकी प्रकृति है। बगुला सफेद होता है, इसीलिए उसे हम अच्छा नहीं कह सकते, क्योंकि वह उसकी प्रकृति है। शेर हिरन को खाता है, उसे हम बुरा नहीं कह सकते, क्योंकि वह उसकी प्रकृति है। गाय मांस नहीं खा सकती, हम उसे बड़ी अच्छी कहकर उसकी महिमा का वर्णन नहीं कर सकते, क्योंकि वह उसकी प्रकृति है।

भारत के लोग बगीचा लगाते हैं और फूलों की बड़ी कदर करते हैं। किंतु उन्हें तोड़कर गले में डालना पसंद नहीं करते, बल्कि उन्हें परमेश्वर की पूजा में ही लगाते हैं। उत्तम–उत्तम फूल ले लिये और अपने बालों में लगा दिये, यह प्रकृति है। फूलों की परवाह न करना, उन पर पांव देकर चलना, उन्हें तुच्छ समझना विकृति है। और फूल का उपयोग भगवान की मूर्ति सजाने में करना, यह मानवी संस्कृति है। अपने लिए सुंदर मकान बनाकर रहना प्रकृति है। उस मकान को ऐसा सजाना कि नजदीक की झोपड़ियों की परवाह ही न की जाये विकृति है।

प्रयोगशील संस्कृति

भारत की संस्कृति प्रयोगशील है। भारत प्राचीन काल में बहुत ही प्रवृत्तिमय था। यहां आध्यत्मिक प्रवृत्ति और बहुत गाढ़ और गूढ़ चिन्तन चलता था। उसके लिए बहुत प्रयोग भी हुए, उसके निष्कर्ष भी निकले

और उसका एक समाजशास्त्र भी बना। ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा, गृहस्थाश्रम के नियम, वानप्रस्थ का विश्वास, संन्यास का आदेश, मांसाहार का निषेध, खेती के लिए आदर, शिक्षा पर राज्य सत्ता का अधिकार न हो, कोई भी अपना काम छोड़कर नफे के लिए दूसरे के कामों में दाखिल न हो – ऐसे अनेक प्रयोग भारत में हुए। कोई वर्ण के नाम से हुए, कोई आश्रम के नाम से, कोई योगभ्यास के नाम से, कोई भक्ति के नाम से, कोई तत्त्वज्ञान और दर्शन के नाम से, कोई गुणविकास के नाम से, ऐसे विविध नाम देकर आध्यात्मिक प्रयोग भारत में बहुत हुए।

आश्रम योजना उसमें से एक प्रयोग है। जीवन को चार आश्रमों में बाटने से मनुष्य की वासना क्षीण होती है और समाज को वानप्रस्थों के रूप में नित्य नये सेवक मिलते रहते हैं। गृहस्थाश्रम में मर्यादा दाखिल कर आश्रम योजना से जनसंख्या का भार भी कुछ कम होगा। ऐसी योजना हमारे पूर्वजों ने की। यह योजना कुछ कठिन जरूर है, लेकिन अव्यवहार्य नहीं।

अद्वितीय विचार–संपदा

हिंदुस्तान के लिए दावा किया जाता है कि यह एक बड़ा संपन्न देश है। यहां सुंदर–सुंदर सैकड़ों नदियां बहती हैं और हिमालय जैसा पहाड़ तो हमारी सेवा करता ही है। हमारा देश बड़ा ही सुजल और सुफल है। लेकिन हिंदुस्तान से भी बहुत अधिक सुजल–सुफल देश दुनिया में मौजूद हैं।

हां, हम यह दावा जरूर कर सकते हैं कि यहां जो विचार–संपदा हमें मिली है, वह अत्यंत अद्वितीय है। यह बात मैं कोई अभिमान से नहीं कह रहा हूं। अगर मैं आज जैसा ही निष्पक्षपाती और तटस्थ होकर दूसरे किसी देश में जनमा होता, तो भी हिंदुस्तान के लिए यही कहता कि इसका विचार–वैभव निःसंशय अद्वितीय है। यह इसलिए नहीं कि यहां नाटकादि साहित्य रचा गया है। ये तो मामूली चीजें हैं। लेकिन बुनयादी चीज 'आध्यात्मिक विचार–संपदा' है, जिसे हम 'जीवन का पाथेय' कह सकते हैं। वही हमारे लिए अद्वितीय है।

सनातनो नित्यनूतनः

भारत एक पुराना देश है, पुराण पुरुष है। वेद में एक वाक्य आता है – **अग्निः पूर्वेमिर् ऋषिमिर् ईड्यो नूतनैरुत** (ऋसा 1.1.2)। अग्नि की पूजा प्राचीन ऋषि भी करते थे, इसलिए हमको भी करनी चाहिए। वैदिक ऋषि अपने प्राचीन ऋषियों का आधार देते हैं। वे ऋषि 20 हजार साल पुराने हैं, तो उनके प्राचीन तो और भी पहले के होंगे। इतनी प्राचीन परंपरा यहां है।

भारत में वैदिक ऋषियों से लेकर आज तक शब्दों की एक अखंड परंपरा चली आ रही है। मैं दुनिया का कोई ऐसा देश नहीं जानता, जहां की भाषा में दस हजार वर्षों से शब्द चले आ रहे हों।

अग्निमीळे पुरोहितम् – (ऋसा 1.1.1)। यह वैदिक मंत्र दस हजार वर्षों का तो है ही। उसमें के अग्नि, देव, ऋत्विज, पुरोहित, यज्ञ, रत्न आदि सभी शब्द आज भी हमारी भाषा में कायम हैं। यद्यपि भाषाएं बदलीं, अपभ्रंश हुए, लेकिन यहां की ज्ञानपरंपरा खंडित नहीं हुई। यास्काचार्य ने कहा – **सनातनो नित्यनूतनः** – ऐसी हमारी सनातन–नित्यनूतन संस्कृति है। हमारे भीतर एक तंतु कायम है। अगर पुराने जमाने का कोई ऋषि आज आये तो उसे हमारे शरीर पर बाह्य वेष अलग ही दीखेगा, लेकिन उसे ऐसा कुछ अवश्य दिखेगा, जिससे वह कहेगा कि ये मेरे ही बच्चे हैं। हमारे भीतर कोई शाश्वत, स्निग्ध, चीमड़, जीवटवाली और कठोर वस्तु है, जो बदलती नहीं। हमारे पीछे यह बहुत बड़ा बल है।

हम कम–से–कम दस हजार साल पुराने हैं। जब दूसरे देशों का इतिहस आरंभ भी नहीं हुआ था, तब हमारे पूर्वज गौरव शिखर पर पहुंच गये थे। काफी परिवर्तन होने के बावजूद यहां की परंपरा अटूट रही, जो प्राचीन काल से हमें जोड़ती है। स्थल–काल के भेदों के अलावा यहां एकता का ही दर्शन होता है। जो दर्शन काशी में होता है, वही रामेश्वर में भी होता है। जो दर्शन दस हजार साल पहले होता था, वही अज बीसवीं शताब्दी में भी हो रहा है। हमारे जीवन का ढांचा बदला, फिर भी हमारी आंतरिक एकता कायम ही रही। यूनान, रोम, मिस्र मिट गये, लेकिन इस देश में अभी भी एक हस्ती मौजूद है – **यूनानो मिस्र रूमा सब मिट गये जहाँ से। कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।** यह 'कुछ' क्या है ?

पुराने जमाने में हिंदुस्तान में खूब हलचलें हुई और

हिंदुस्तान के लोग दुनिया भर पहुंचे। वे चीन और जापान में गये और वहां उन्होंने बुद्धधर्म का प्रचार किया। यहां तक कि ईसा के जन्म पर भी हिंदुस्तान के ज्ञानी लोग वहां पहुंचे, ऐसा कहते हैं। 'पूरब के बुद्धिमान व्यक्ति' इस तरह का बाइबिल में उल्लेख है। हिंदुस्तान के थोड़े ही लोग बाहर व्यापार के लिए गये और बहुत ज्यदा तो धर्मप्रचार के लिए ही गये। इस तरह उस जमाने में हिंदुस्तान में बहुत उत्साह था। यहां अध्ययन और अध्यापन बहुत चला। ज्ञान की विविध शाखाओं का विचार हुआ। गणितशास्त्र का शोध हुआ, व्यवहार का अध्ययन हुआ। वैद्यकशास्त्र चला, ज्योतिषशास्त्र और वनस्पतिशास्त्र बढ़ा, अध्यात्मविद्या खूब चली। साहित्य चला, बड़े–बड़े महाकव्य लिखे गये। अनेक प्रकार के सूक्ष्म तत्त्वज्ञान के विचार निकले। उस जमाने में यूरोप में अंधकार था।

फिर कुछ थकान आयी और भारत सो गया था, लेकिन अब फिर से जाग रहा है। रामकृष्ण परमहंस, रवींद्रनाथ ठाकुर, अरविंद घोष, विवेकानंद, लोकमान्य तिलक, रानडे – कितने नाम लूं ? सैकड़ों ले सकता हूं। इतनी ही मुद्दत में किसी भी देश में इतनी तादाद में महान पुरुषों की संख्या नहीं देखी गयी। भारत फिर से जाग रहा है।

हिन्दुस्तान की आत्मा में शक्ति का भंडार भरा है। यहां से संस्कृति का सर्वांगीण आध्यत्मिक ज्ञान समय–समय पर फूट निकलता है। थकान आना साधारण बात है। दिन भर काम करने के बाद मनुष्य थक जाता है, तो उसे रात में सोना ही पड़ता है। इस तरह सारे समाज में होता है। हिंदुस्तान को भी थकान आयी, इसमें कोई आश्चर्य नहीं, लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि थका हुआ भारत फिर से जाग गया। कहां है पुराना यूनान ? पुराना रोम ? उसका नामोनिशां तक नहीं रहा। भारत फिर जाग गया। उसमें नवसंचार हुआ। क्यों ? अंदर स्फूर्ति थी, वह जाग गयी। कोई सो रहा है। उसे जगाने के लिए किसी ने धक्का लगाया और जोर से कहा–जागो। तो वह जाग जाता है। फ्रेन्चों ने, अंग्रेजों ने यहां आकर धक्का लगाया। चिकोटियां काटीं। तो भारत जाग गया। चेतन से भरा हुआ, संपूर्ण ज्ञान और आध्यात्मिक प्राण उसमें था, उसी शक्ति से वह जाग गया।

दुनिया में क्या होता है ? परतंत्र लोगों को परतंत्रता की चिढ़ आती है और वे स्वतंत्रता के लिए बलवा कर देते हैं। पर हिंदुस्तान में क्या हुआ ? वह पारतंत्र्य में था, तब देश जाग गया और जागने के बाद समाज–सुधार किये, धर्म–सुधार किये। भारत ने यह समझ लिया कि हममें कुछ दोष हैं। इसीलिए हम गुलाम रहे हैं, इसलिए चिढ़ने से दोष निवृत्ति नहीं होगी। कुछ काम करना होगा। स्वातंत्र्य के पहले प्रवक्ता राजाराममोहन राय थे। उन्होंने यही कहा कि – कैसे निद्रा में पड़े हो ? बहुत बुराइयां समाज में आ गयी हैं, धर्म में जड़ता पैठ गयी है। उपनिषद का धर्म कितना उज्जवल था। अतः आज धर्म में सुधार करना होगा। इस तरह सुधार की प्रेरणा परतंत्र राष्ट्र को हुई। रानडे ने कहा– यह डिवाइन डिस्पेन्शन (दैवी विधान) है। यानी भारत को धक्का चाहिए और यूरोप की संस्कृति उसे धक्का दे रही है, यह ठीक ही है। उससे जड़ता चली जायेगी। जैसे सोने को तपाने से शुद्ध सोना निकलता है, वैसे ही इस धक्के की अग्नि से भारत तपेगा और शुद्ध होगा। पुराने गुण उज्ज्वल होकर निकलेंगे। दोष कम होंगे और पाश्चत्य संस्कृति के कुछ गुण भी इसमें आयेंगे। दोनों संस्कृतियों का संगम होगा। दोनों की भलाई हिंदुस्तान में रहेगी। ऐसा रानडे समझते थे और हुआ भी ऐसा ही।

श्री अरविंद सारी पश्चिम की संस्कृति पी गये। विज्ञान, साहित्य, काव्य, राजनीति, अर्थशास्त्र, तत्त्वज्ञान सबमें प्रवीण हो गये। किंतु उन्होंने क्या किया ? उपनिषदों का अध्ययन किया, वेद पर भाष्य लिखा, गीता पर चिंतन किया, और एक नया योगशास्त्र दुनिया को दिया। इस तरह भारतीय संस्कृति को और उज्जवल बनाया। दो संस्कृतियों के संगम से परिपक्व फल का निर्मण हुआ।

महात्मा गांधी दो संस्कृतियों के संगम थे। उन्होंने पश्चिम का विचार आत्मसात् किया और यहां का विचार पूरा उनमें भरा हुआ था। इस तरह मधुर फल निर्माण हुआ। जाग जाने पर पुनः प्रकट हुआ। बाघ, सिंह या गधा जैसे सोते हैं, जागने पर भी वैसे ही रह जाते हैं। शेर, शेर होकर जागेगा। सिंह, सिंह होकर और गधा, गधा बनकर ही जागेगा। भारत सोया था और उठा तो पुराने भारत की उज्ज्वलता लेकर ही उठा।

(साभार : विनोबा साहित्य, खण्ड–20, पृष्ठ 3–7)

सत्य–अहिंसा : प्रेम और करुणा

गौतम

गांधीजी सत्य–अहिंसा बोलते थे। तो हमने क्या मान लिया कि हमें जो ठीक लगता है, वही है सत्य। लेकिन वेद में इसे कहा है **मम सत्यम्**। सत्य नहीं है, ये 'मेरा' सत्य है। इसका सत्य, उसका सत्य, सब सत्यों की लड़ाई ही हो जायेगी।

दूसरा शब्द है अहिंसा। आपकी और मेरी अभी मारपीट नहीं हो रही है, इसका नाम है अहिंसा। या हमने हाथ में शस्त्र नहीं उठाया, इसका नाम अहिंसा। शस्त्र उठाकर या लकड़ी लेकर मारपीट करना सामान्य हिंसा है। उससे भी गहरी मानसिक हिंसा है। हमारे मानस में किसी के प्रति जो द्वेषभाव है, परायाभाव है, ये सब भी हिंसा ही है। बहुत बड़ी हिंसा है और वह जीवन भर चलती रहती है। जल्दी छूटती नहीं। यह भी देखने को मिलता है कि दुश्मनी पीढ़ियों से चलती आती है। इसलिए स्थूल हिंसा से मानसिक हिंसा बहुत गहरी और भयानक है।

अतः बाबा (विनोबा) ने अहिंसा शब्द का दो शब्दों में अर्थ बताया, प्रेम और करुणा। ये दो शब्द मिलकर अहिंसा का पूर्ण व्याख्या होती है। मार्टिन लूथरकिंग ने नोबल प्राइज लेते हुए कहा कि ये जो स्थूल हिंसा का निषेध करते हैं, वह तो ठीक ही है लेकिन जो मानसिक हिंसा है, उसको भी समझना चाहिए। लेकिन बाबा हमें उससे आगे ले गये हैं। उन्होंने उसका नाम दिया है प्रेम। यानी आपके मन में हिंसा नहीं है, इतना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि सामनेवाले के लिए परिपूर्ण 'प्रेम' होना चाहिए। इतने से भी पूरा नहीं होता है, अतः उससे आगे एक शब्द दे दिया 'करुणा'। यानी उसकी भलाई के लिए कुछ करने की भी प्रेरणा होनी चाहिए। जिन्हें हम सहज शब्द समझते थे, हमें लगता था कि इसके अर्थ हम समझते हैं, उसको बाबा इतना आगे गहराई तक ले गये।

वैसे देखा जाये तो सत्य व प्रेम की तुलना में करुणा जरा समान्य शब्द है। लेकिन करुणा से भी बहुत अनर्थ होते हैं। जिस करुणा की बात भगवान बुद्ध ने कही, जिस करुणा की बात अभी बाबा कह रहे हैं; उस करुणा को यदि ठीक से नहीं जाने तो उससे बड़ी हिंसा हो सकती है। बाबा का एक वाक्य है कि जो सिर्फ हरदम अहिंसा की दृष्टि से ही सोचते रहते हैं, वे जब प्रत्यक्ष कृति में उतरते हैं तो सीधे हिंसा में जाते हैं। करुणा की दृष्टि से एक उदाहरण देता हूं। एक थी भगवान बुद्ध की करुणा, वह करुणा मनुष्य को कहां तक ले गयी ? वह करुणा हमें तृष्णाक्षय तक ले जाती है। उन्होंने कहा कि तृष्णाक्षय के बिना दुःख–निवारण होनेवाला नहीं है। भौतिक काम जो करना है, वह करिए, लेकिन तृष्णाक्षय होना चाहिए। बाबा ने एक जगह उदाहरण दिया है कि भगवान बुद्ध यदि मजदूरों की मजदूरी दो रुपये से तीन रुपये करने के लिए आंदोलन किये होते, तो यह करुणा का ही काम होता, लेकिन क्या आज हम ढाई हजार साल बाद भी भगवान बुद्ध को याद करते ? पर आज हमारा राष्ट्रीय चिंतन इसके आगे जाता ही नहीं। लेकिन भगवान बुद्ध ने तृष्णाक्षय की बात की, कि उसके बिना दुःख–निवारण नहीं होगा, तो आज भी हम उनको याद करते हैं।

दुनिया में दूसरे लोग भी निकले करुणा की बात करने वाले, जैसे – मार्क्स। उन्हें हमारे लोगों ने महामुनि मार्क्स कहा। मार्क्स का जो तत्त्वज्ञान निकला, वह सारा करुणा में से निकला। जो अत्यंत गरीब थे, मजदूर थे, जो सताये जाते थे, उन्हीं के लिए वह सारी बात निकली। उसी का विचार लेकर आगे रशिया में क्रांति हुई। उस करुणा में से वे क्या समझे कि बड़े को काटो और छोटे को आगे बढ़ाओ। तो उसमें तीस–चालीस लाख लोग मारे गये। करुणा में से वह विचार निकला। चीन में क्रांति हुई तो उसमें ज्यादा पचास–साठ लाख लोग मारे गये। तो करुणा क्या है, यह हम समझते नहीं। करुणा का ऊर्ध्वगामी रास्ता कौन–सा है और निम्नगामी क्या है, यह देखें। वास्तव में करुणा निम्नगामी होती ही नहीं। लेकिन हमने उसे इस तरह से जोड़ दिया। तो उसमें से इतना भयंकर हिंसा भी पैदा हो सकती है। वैसे ही प्रेम में से मोह पैदा होता है, आसक्ति पैदा होती है। इसलिए इन शब्दों को हमें गहराई से समझना चाहिए और बाबा ने तो सूचना दे रखी है कि अगर आप संपूर्ण समाज–परिवर्तन की बात करते हैं तो ये बहुत बड़ा शब्द है। हमारे पूर्वजों ने, ऋषियों ने इतना बड़ा➩

हे राम!

30 जनवरी 1948 : सायं 5.12

कइयों का ऐसा खयाल है कि अंतिम दिनों में गांधीजी के दिल में खूब वेदना थी। लेकिन वह भीतरी नहीं थी वह हमारे लिए थी और हमारे कारण थी। उन्हें अंत में जो सहन करना पड़ा, वह सब सहन किया, लेकिन यह समझना बिल्कुल नासमझी का होगा कि उनकी कोई वासना रह गयी थी। वे वासनाओं को पार कर गये थे और अंत में उनकी लीला चलती थी। आखिरी दिनों में तो मानों कृष्ण–लीला ही थी। उन दिनों का रहस्य समझाने के लिए तो गांधीजी को स्वयं ही आना पड़ेगा। कृष्ण के जीवन में भी आखिर में बाह्य जीवन में वेदना थी। यादवकुल में आपस–आपस में जो चल रहा था, उसके कारण यह वेदना थी। तो, जो दशा श्रीकृष्ण के प्रयाण–समय में यादवकुल की थी, वही दशा भारत की गांधीजी के प्रयाण के समय में थी। इसमें भगवान कृष्ण की जो हालत थी, वही गांधीजी की थी।

अंतिम घड़ी में उन्होंने क्या किया ? जब उनको गोली लगी, तब पहला काम उन्होंने यह किया कि अपने दोनों हाथ जोड़ दिये – प्रणाम! और अत्यंत सहजभाव से उन्होंने भगवान का नाम लिया – **हे राम!** बस, समाप्त! तुसीदासजी ने गाया है – **जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं, अंत राम कहि आवत नाहीं।** अनेक जन्मों तक प्रयत्न करते रहते हैं, फिर भी अंतकाल में रामनाम मुख पर नहीं आता। जनम–जनम तक मंथन करने पर भी अंतिम घड़ी में राम का स्मरण हो, ऐसा होता नहीं। जबकि गांधीजी की जिहवा से आखिरी शब्द निकला – **'हे राम'!** अंत में **'हे राम!'** कहकर वे गये। कोई भी भक्त इससे अधिक और क्या कर सकता है ?

गांधीजी ने यह जो राम का नाम लिया, वह राम कौन है ? यह वह राम है, जिसका नाम दशरथ ने अपने बेटे का रखा था। परशुराम, बलराम, आदि के पिताओं ने भी अपने लड़कों के लिए उसी का नाम रखा। दशरथ के राम बड़े अवतारी पुरुष हो गये। लेकिन यह जो रामनाम है, वह तो दशरथ के राम से भी प्राचीन है। यह रामनामवाला 'राम' तो सबके हृदय में रममाण होनेवाला परमेश्वर है, और इसी राम का नाम गांधी जी ने लिया।

(विनोबा साहित्य : खण्ड–17, पृष्ठ 469–470)

➪शब्द इस्तेमाल नहीं किया, वह अगर आप करते हैं तो आपको पूर्वजों से भी अधिक गहराई में जाना पड़ेगा। गहराई से इन शब्दों को, विचारों को नहीं समझेंगे तो उसमें से विपरीत परिणाम आयेगा। इसलिए सूक्ष्म अध्ययन होना चाहिए, उसकी हमको बहुत उत्तम व्यवस्था करनी चाहिए। हम देखते हैं कि आज कहीं भी हमारे विचारों के समक्ष अध्ययन की व्यवस्था नहीं है। कहीं कॉलेज में कोई एकाध विषय से कुछ छिट–पुट परिचय होता है। केवल प्रस्तावना भी नहीं है वह, परिचय है। प्रस्तावना कैसी हो, देखनी हो तो 'उपनिषदों का अध्ययन' देखिए। उपनिषदों का वह प्रस्तावना खंड है, इंट्रोडक्शन है। ऐसी सब बातों की तरफ हमें ध्यान देना चाहिए।

कर्म तो हमको करना है, शरीर है तो खाना है। समाज है तो वो जो सारे कर्त्तव्य हैं, वह हैं, लेकिन हम जब ब्रह्मविद्या–मंदिर के स्थान पर आते हैं, बाबा के स्थान पर आते हैं तो हमें यह चिंतन गहराई से करना चाहिए और इसमें आगे बढ़ने की कोशिश करनी चाहिए। बाकी ये संसार चक्र चलता रहता है। संसार कहां नहीं है ? संसार केवल बाहर नहीं है, संसार हमारे मन में भी भरा हुआ है। बाबा कहते थे कि कम–से–कम हमारे मन में से, हमारे विचारों में से तो संसार को हटाओ। वह हटाने के लिए हमें इस प्रकार के चिंतन की आदत डालनी पड़ेगी। गहराई में जाने की आदत करनी पड़ेगी। सही में गहराई में जाना हो तो हमें मन के विकारों को, रागद्वेष को हटाना पड़ेगा। वह हटाकर जब हम चिंतन करेंगे, तब सत्य की ओर कुछ आगे बढ़ेंगे। सबको सत्याग्रह का अधिकार नहीं, ऐसा कहते समय बाबा ने कहा था कि सत्य समझने की भी अकल होनी चाहिए। नहीं तो उसको नाम दिया है **मम सत्य्।** और भाष्यकार ने उसका अर्थ किया है, युद्धम्। थोड़े में 'मम सत्य' यानी युद्ध यानी लड़ाई, झगड़ा, हिंसा। तो सत्यम में से 'मम सत्य' होता है। करुणा में से हिंसा निकलती है। प्रेम में से आसक्ति और मोह निकलते हैं तो फिर इन शब्दों का क्या अर्थ रह जायेगा ? इसलिए हमको गहराई से चिंतन करना, सोचना, समझना चाहिए।

(पवनार मित्र–मिलन के समारोपीय भाषण से : मैत्री, 12 दिसम्बर, 2022 से साभार)

नदव लापिद की 'कश्मीर फाइल्स'

जिस तरह का सच यह है कि आईना झूठ नहीं बोलता, उसी तरह का सच यह भी है कि कैमरा झूठ नहीं बोलता। इसे हम इस तरह भी समझ सकते हैं कि सच प्राकृतिक है; झूठ गढ़ना पड़ता है – फिर वह झूठ सौंदर्य प्रसाधनों से बोला जाए या खुराफाती–स्वार्थी इंसानी दिमाग से। गोवा में आयोजित भारतीय अंतराष्ट्रीय फिल्म महोत्सव के आखिरी दिन, महोत्सव की जूरी के अध्यक्ष इस्राइली फिल्मकार नदव लापिद ने यही बात कही – न इससे कम कुछ, न इससे अधिक कुछ। इसके बाद गर्हित राजनीति का जो वितंडा हमारे यहां फूट पड़ा, वह भी इसी सच को मजबूत करता है कि सच **घटे या बढ़े तो सच ना रहे। झूठ की कोई इंतहा ही नहीं।**

इतिहास बनाना इंसानी साहस की चरम उपलब्धि है; इतिहास को विकृत करना मानवीय विकृति का चरम है। हम दोनों ताकतों को एक साथ काम करते देखते हैं। इंसानी व सामाजिक जीवन में कला की एक अहम भूमिका यह भी है कि वह इन दोनों के फर्क को समझे व समझाए। जो कला ऐसा नहीं कर पाती है वह कला नहीं, कूड़ा मात्र होती है। इसलिए कोई पिकासो 'गुएर्निका' रचता है, कोई चार्ली चैपलिन 'द ग्रेट डिक्टेटर' बनाता है, कोई एटनबरो 'गांधी' लेकर सामने आता है। अनगिनत पेंटिंगों, फिल्मों के बीच ये अपना अलग व अमर स्थान क्यों बना लेती हैं। इसलिए कि युद्ध की कुसंस्कृति को, विकृत मन की बारीकियों को तथा इंसानी संभावनाओं की असीमता को समझने में ये फिल्में हमारी मदद करती हैं। तो कला की एक सीधी परिभाषा यह बनती है कि जो मन को उन्मुक्त न करे, उदात्त न बनाए वह कला नहीं है।

दूसरी तरफ वे ताकतें भी काम करती हैं जो कला का कूड़ा बनाती रहती हैं ताकि सत्य व असत्य के बीच का, शुभ व अशुभ के बीच का, उदात्तता व मलिनता के बीच का फर्क इस तरह उजागर न हो जाए कि ये ताकतें बेपर्दा हो जाएं। विवेक की इसी नजर में गोवा फिल्मोत्सव में बनी जूरी को 14 अंतरराष्ट्रीय फिल्मों को देखना–जांचना था। लापिद इसी जूरी के अध्यक्ष थे। जूरी में या उसके अध्यक्ष के रूप में उनका चयन सही था या गलत, इसका जवाब तो उन्हें देना चाहिए जिनका यह निर्णय था लेकिन 5 सदस्यों की जूरी अगर एक राय थी कि 'कश्मीर फाइल्स' किसी सम्मान की अधिकारी नहीं है, तो इस पर किसी भी स्तर पर, किसी भी तरह की आपत्ति उठना अनैतिक ही नहीं है, घटिया राजनीति है जिसका दौर अभी हमारे यहां चल रहा है।

लापिद ने जूरी के अध्यक्ष के रूप में महोत्सव के मंच से जब 'कश्मीर फाइल्स' को 'अश्लील शोशेबाजी' ('वल्गर प्रोपगंडा' का यह मेरा अनुवाद है) कहा तब वे कोई निजी टिप्पणी नहीं कर रहे थे। जूरी में बनी भावना को शब्द दे रहे थे। जूरी के बाकी तीनों विदेशी सदस्यों ने बयान दे कर लापिद का समर्थन किया है। भारतीय सदस्य सुदीप्तो सेन ने अब जो सफाई दी है वह बात को ज्यादा ही सही संदर्भ में रख देती है : "यह सही बात है कि यह फिल्म हमने कला की कसौटी पर खारिज कर दी। लेकिन मेरी आपत्ति अध्यक्ष के बयान पर है जो 'कलात्मक' नहीं था। 'वल्गर' व 'प्रोपगंडा' किसी भी तरह कलात्मक अभिव्यक्ति के शब्द नहीं हैं।" मतलब साफ है कि 'कश्मीर फाइल्स' कहीं से भी कला से सरोकार नहीं रखती है, इस बारे में जूरी एकमत थी। ऐसा क्यों था, इसकी सबसे गैर–राजनीतिक सफाई जो कोई भी अध्यक्ष दे सकता था, लापिद ने दी। उन्हें यह बताना ही चाहिए था कि क्यों जूरी ने उन्हें सौंपी गई 14 फिल्मों में से मात्र 13 फिल्मों में से ही अपना चयन किया, और 14वीं फिल्म को फिल्म ही नहीं माना ? जूरी के अध्यक्ष लापिद्र का धर्म था कि वे यह बताते। जिन् शब्दों में लापिद ने वह बताया, वह कहीं से भी राजनीतिक, गलत, अशोभनीय या कला की भूमिका को कलंकित करने वाला नहीं था।

हमारे यहां ही कला–साहित्य–पत्रकारिता का आसमान इन दिनों इतना कायर व कलुषित हो गया है कि वहां कला व सच की जगह बची नहीं है। जूरी के विदेशी सदस्यों ने अपने बयान में इसे पहचाना है : "हम लापिद के बयान के साथ खड़े हैं और यह साफ करना चाहते हैं कि हम इस फिल्म की विषयवस्तु के बारे में अपना कोई

राजनीतिक नजरिया बताना नहीं चाहते हैं। हम केवल कला के संदर्भ में ही बात कर रहे हैं और इसलिए महोत्सव के मंच का अपनी राजनीति के लिए व नदव पर निजी हमले के लिए जैसा इस्तेमाल किया जा रहा है, उससे हम दुखी हैं। हम जूरी का ऐसा कोई इरादा नहीं था।''

जब नवद से पूछा गया कि जिस फिल्म को जूरी ने किसी सम्मान के लायक नहीं माना, उस फिल्म पर आपको कोई टिप्पणी करनी ही क्यों चाहिए थी, नदव ने बड़ी ईमानदारी के साथ अपनी बात रखी। यह कहने की जरूरत नहीं है कि ईमानदारी से खूबसूरत कलात्मक अभिव्यक्ति दूसरी नहीं होती है। नदव ने कहा : ''हां, आप ठीक कहते हैं, जूरी सामान्यतः ऐसा नहीं करती है। उनसे अपेक्षा यह होती है कि वे फिल्में देखें, उनका जायका लें, उनकी विशेषताओं का आकलन करें तथा विजेताओं का चयन करें। लेकिन तब यह बुनियादी सावधानी रखनी चाहिए थी कि 'द कश्मीर फाइल्स' जैसी फिल्में महोत्सव की प्रतियोगिता खंड में रखी ही न जाएं। दर्जनों महोत्सवों में मैं जूरी का हिस्सा रहा हूं, बर्लिन में भी, केंस में भी, लोकार्नो और वेनिस में भी। इनमें से कहीं भी, कभी भी मैंने 'द कश्मीर फ़ाइल्स' जैसी फिल्म नहीं देखी। जब आप जूरी पर ऐसी फिल्म देखने का बोझ डालते हैं, तब आपको ऐसी अभिव्यक्ति के लिए तैयार भी रहना चाहिए।''

सारा खेल तो यही था। यह सरकारी आदेश था या आयोजकों की स्वामी भक्ति का खुला प्रदर्शन था, यह तो वे ही जानें लेकिन चाल यह थी कि झांसे में एक अंतरराष्ट्रीय फिल्म महोत्सव में सरकारी छद्म का यह चीथड़ा दिखा लिया जाए। जूरी मेजबानी के दवाब में आ कर अगर इसे सम्मानित कर दे, तो बटेर हाथ लगी; हाथ नहीं लगी तो दुनिया भर में हम अपना प्रचार दिखा गए, यह उपलब्धि तो हासिल होगी ही। नदव ने यह सारा खेल बिगाड़ दिया। इसलिए हमने देखा कि नदव को भारत स्थित इसराइल के राजदूत से गालियां दिलवाई गईं। जिन 'अनुपम' शब्दों में 'द कश्मीर फाइल्स' गैंग ने नदव का शान-ए-मकदम किया, वह कला के चेहरे पर गर्हित राजनीति का कालिख तो था ही, अंतरराष्ट्रीय कला बिरादरी में भारत को अपमानित करना भी था।

चुनाव जीतते दल : हारता लोकतंत्र

लोकतांत्रिक प्रसव वेदना से गुजर रहे दिल्ली, हिमाचल प्रदेश व गुजरात के गर्भ से चुनाव-परिणाम का जन्म हो चुका है। अब सारे सर्जन, डॉक्टर, नीमहकीम अपने आरामगाहों में लौट चुके हैं। जिन चैनलों की नाल कब की कट चुकी है, वे सब चुनाव परिणामों के विश्लेषण के नाम पर आपसी छीछालेदर में लगे हैं। यह छपने या सुनने वाले मीडिया के सबसे बदरूप चेहरे को बर्दाश्त करने का सबसे शर्मनाक दौर है।

हर चुनाव में कोई दल जीतता है, कोई हारता है। इस चुनाव में भी यही हुआ है। लेकिन पार्टियां ऐसा दिखा रही हैं कि हारा तो दूसरा है, हमारे हिस्से तो जीत-ही-जीत आई है। आम आदमी पार्टी इसी का राग अलाप रही है कि इस चुनाव ने उसे राष्ट्रीय दल बना दिया है; कांग्रेस अपनी नहीं, दूसरों की हार का विश्लेषण करने में निपुणता दिखा रही है; भाजपा के प्रधान भोंपू ने इशारा कर दिया कि सारे भाजपाई एक ही झुनझुना बजा रहे हैं कि हमने सारे रिकार्ड तोड़ डाले। सबकी एक बात सही है कि सभी अपना झूठ छिपा रहे हैं।

चुनाव परिणाम का कोई नाता अगर उस लोकतंत्र से भी होता हो कि जिसके कारण चुनावी राजनीति व संसदीय लोकतंत्र का अस्तित्व बना हुआ है, तो हमें यह खूब समझना चाहिए कि दल जीत रहे हैं, 'हम भारत के लोग' और उनका लोकतंत्र लगातार हारता जा रहा है। संविधान अब एक पुराने जिल्द की रामायण भर बची है जिसका राम कूच कर गया है। कौन, क्या जीता इसकी इतनी वाचाल चर्चा की जा रही है ताकि किसी को याद करने की फुर्सत न रहे कि हम कहां, क्या हार रहे हैं। हम चुनावों की वैधानिक पवित्रता व उसका राजनीतिक अस्तित्व हार रहे हैं; हम चुनाव आयोग हार रहे हैं; हम चुनावों की आचार संहिता हार रहे हैं; हम बुनियादी लोकतांत्रिक नैतिकता हार रहे हैं। हम हर वह नैतिक प्रतिमान हार रहे हैं जिसके आधार पर हमारा संविधान बना है; हम हर वह लोकतांत्रिक मर्यादा हार रहे हैं जिसके बिना लोकतंत्र भीड़बाजी मात्र बन कर रह जाएगा। हर चुनाव में जातीयता जीत रही है, धार्मिक उन्माद जीत रहा

मुद्रा का बाजार और बाजार की मुद्रा

प्रेरणा

देश की वित्त मंत्री निर्मला सीतारामण के हाल के एक बयान ने खलबली मचा दी है। रिकार्ड स्तर पर गिरते जा रहे रुपये का बचाव करते हुए उन्होंने कहा कि रुपया कमजोर नहीं हो रहा है, बल्कि डॉलर मजबूत हो रहा है। रुपये के गिरने, रसोई गैस, पेट्रोल आदि के दाम बढ़ने, मंहगाई के आसमान छूने जैसे मुद्दों पर कांग्रेस की खिल्ली उड़ाकर ही बीजेपी सत्ता में आयी थी। आज मियां की जूती, मियां के सिर पड़ रही है।

इस पर दूसरी प्रतिक्रिया आर्थिक विशेषज्ञों की है। वे खुले तौर पर या फिर मजबूरी में बताते हैं कि मुद्रा या करेंसी का व्यापार हमेशा जोड़ी में होता है। यदि डॉलर ऊपर जाएगा तो उसके सामने जो भी मुद्रा होगी, वह नीचे आएगी ही। दुनिया भर की मुद्राएं अपने रिकॉर्ड स्तर पर नीचे जा पहुंची हैं, क्योंकि दुनिया में डॉलर की मांग बढ़ गई है। आलम यह है कि लोग दूसरी मुद्राएं बेच–बेचकर डॉलर खरीद रहे हैं।

डॉलर–रुपये की इस उठा–पटक को देखने का एक और नज़रिया भी है – आम आदमी का नज़रिया! दुनिया का आर्थिक कारोबार इतना जटिल हो गया है कि आम आदमी केवल लल्लू बनकर रह गया है। महंगाई हो, बेरोजगारी हो, शिक्षा हो या स्वास्थ्य, सामाजिक समरसता हो कि घर का बजट – इनमें से कुछ भी नहीं है जो आम आदमी के काबू में हो। आप कहेंगे : आम आदमी में इतनी काबिलियत है क्या कि वह वैश्विक कारोबार की पेंचीदगियां समझ पाए ? लेकिन अगर मैं यह पूछूं कि क्या आप आम आदमी का मतलब समझते हैं, तो ?

यह आम आदमी दुनिया का 95 प्रतिशत है। दुनिया का आर्थिक कारोबार यदि मात्र 3 से 5 प्रतिशत लोगों की समझ में ही आता है तो बात खतरनाक बन जाती है और उनके निहित स्वार्थ की बात भी खुल जाती है। जो खेल 3 से 5 फीसदी की मुट्ठी में बंद है तो कहानी ऐसी बन जाती है कि उनका मुनाफा हमारी जेब खाली करके पूरा होता है। सारी दुनिया के आम लोग उसकी कीमत चुकाते हैं – रोज–रोज चुका रहे हैं।

महंगा पेट्रोल हो कि फर्टिलाइजर, इलाज हो कि शिक्षा, बेरोजगारी हो कि विस्थापन – सभी मुनाफा कमाने की उस अंधी, अनैतिक दौड़ पर आधारित लंगड़ी अर्थव्यवस्था की वह कीमत है जो दुनिया का हर आम आदमी चुकाता रहता है। दुनिया के सारे विशेषज्ञ सिर के बल खड़े हो जाएं तो भी यही दिखेगा कि मुट्ठी भर लोगों के हाथों में दुनिया के सभी संसाधन--जल, जंगल, जमीन, साफ हवा, पैसा, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि कैद हो गए हैं। बची अरबों–अरब की दुनिया रोटी के चंद टुकड़ों के लिए लड़ रही है।

प्राकृतिक ढलानों पर संसार की सारी नदियां बहती हैं। आधुनिक वैश्विक समाज का ढलान प्राकृतिक नहीं है। 3 से 5 फीसदी लोगों ने अपनी सुविधा, अपने मुनाफे के लिए पूंजी के बहाव का रास्ता बनाया है। नहर, बांध, उद्योग या फिर शहरीकरण की तरफ ढलान बना रखा है तो पूंजी भी उधर ही बहेगी। कुछ समर्थ लोगों व सत्ताओं ने मिलीभगत से पूंजी को ऐसे ढलान पर डाल रखा है कि वह उसी तरफ बहे जिधर पहले से ही इफरात है। पूंजी बढ़ती है तो भी लौटती वहीं है जहां से वह चली थी। नतीजे में अमीर ज्यादा अमीर और गरीब ज्यादा गरीब होते जाते हैं।

अब इस रोशनी में हम मुद्रा बाजार को देखें। दुनिया की मुद्राओं का बाजार कितना बड़ा है, इसका ठीक–ठीक अंदाजा किसी को नहीं है, क्योंकि इस बाजार पर कोई नियंत्रण नहीं है। 'दूसरे–विश्वयुद्ध' के बाद, विजयी राष्ट्रों ने अपने लाभ का हिसाब लगाकर, दुनिया का सारा कारोबार कुल छह मुदाओं में नियंत्रित कर दिया था, जिन्हें आज 'रिजर्व करेंसी' के नाम से जाना जाता है। मतलब यह कि दो देशों के बीच कोई भी व्यापार केवल इन छह मुदाओं में हो सकता है।

विश्वयुद्ध से सबसे बड़ी ताकत बनकर उभरे अमेरिका ने अपने डॉलर को सबसे आगे रखा। वे तो चाहते ही नहीं थे कि 6 मुद्राओं के इस क्लब में कोई 7वां दाखिल हो, लेकिन चीन ने उनका दरवाजा तोड़ दिया।

उसने अपनी मुद्रा को इस तरह नियंत्रित कर आक्रामक बनाया कि चीन के युआन को 2016 में दुनिया की 'रिजर्व करेंसी' में मान्य करना ही पड़ा। आज एक अनुमान बताता है कि पूरी दुनिया में मुद्रा–बजार लगभग 7 लाख करोड़ डॉलर का है। अगर यह मुद्रा–बाजार कोई देश होता तो यह दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थ–व्यवस्थ होता। इससे आप यह समझ सकते हैं कि मुद्रा–खेल के नियम पहले से ही कुछ ऐसे बनाए गए हैं कि दुनिया डॉलर के इर्द–गिर्द ही घूमती रहे।

दुनिया की कुल जनसंख्या के कितने फीसदी लोग इस मुद्रा–बाजार में सीधे सक्रिय हैं ? इसका कोई अधिकारिक आंकड़ा नहीं है, लेकिन जानकार बताते हैं कि भारत के केवल 3 प्रतिशत लोग शेयर बाजार में सक्रिय हैं। दूसरे नंबर पर जापान आता है जहां 6 प्रतिशत लोग शेयर बाजार में सक्रिय हैं। सबसे ऊपर अमेरिका है जहां लगभग 14 प्रतिशत लोग शेयर बाजार में 'सीधे' सक्रिय हैं। अब हम अंदाजा लगा सकते हैं कि जब शेयर बाजार में इतने कम लोग सक्रिय हैं तो मुद्रा–बाजार में जो शेयर मार्केट से कहीं ज्यादा जटिल संरचना है, में दुनिया के कितने प्रतिशत लोग सीधे सक्रिय होंगे ? बहुराष्ट्रीय कंपनियां, आयात–निर्यात के काम में लगे उद्योग, बैंकें, सरकारें, म्युचुअल–फण्ड आदि में दुनिया के गिने–चुने अमीर लोग ही सक्रिय होते हैं।

अब हम रुपये की तरफ लौटते हैं। जब से यूक्रेन–रूस युद्ध शुरू हुआ है यूरोप की मंदी और गहरी हो गई है। अपनी ही नीतियों के चक्रव्यूह में फंसकर अमेरिकी और चीनी अर्थव्यवस्था कमजोर पड़ रही है। इन सबको जोड़ दें तो अनुमान है कि पूरी दुनिया की लगभग 60 प्रतिशत अर्थ–व्यवस्था आज मंदी की चपेट में है या जल्दी ही आ जाएगी। ऐसे हाल में दुनिया के पूंजीपति अपनी कमाई करने कहां जाएंगे ? वहीं न, जहां उन्होंने ढलान बना रखा है। तो सारी पूंजी वहीं जाएगी जहां जल–जंगल–मजदूर सस्ते हों, उनकी लूट पर सवाल उठाने वाली कोई ताकत जहां न हो, राजनीतिक व्यवस्था हो तो इतनी भ्रष्ट कि उसे पूंजी से खरीदा जा सके। जहां सस्ते संसाधनों के दोहन से सस्ते में उत्पादन करने और फिर दुनिया भर के बाजारों में उसे बेचकर अकूत दौलत कमाने में बाधा न हो।

'मेक इन इंडिया' के नारे को याद करें। यदि उत्पादन करने वाले देश का अपना ही बड़ा बाजार हो तो समझिए कि बोनस है। यही मोदीजी, उनकी सरकार और आर्थिक बाजार में उनकी तरफ से खेलने वाले कुल 3 प्रतिशत भारतीयों के लिए 'स्वर्णिम भारत' है, 'विश्वगुरू भारत' है, दुनिया की सबसे तेज अर्थ–व्यवस्था है। बाकी का 97 प्रतिशत भारत अपनी जेब उलटीकर झाड़ रहा है कि वहां कहीं कोई सिक्का अटक तो नहीं गया।

गांधी कहते हैं यह बांझ अर्थ–व्यवस्था है। उनका दिया ताबीज लागू करें तो दुनिया के सीतारमण और ऋषि सुनक जैसे लोग किसी कठपुतली–से नजर आएंगे। गांधी अपने ताबीज में कहते हैं : 'जब भी तुम्हें अपने कदम के सही या गलत होने पर कोई संदेह हो या तुम्हारा अहंकार तुम पर हावी होने लगे, तब मेरी यह कसौटी आजमाओ। तुमने अपने जीवन में जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी देखा हो, उसका चेहरा याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम तुम उठाने जा रहे हो, वह उस आदमी के कितने काम का होगा ? या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा ? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू पा सकेगा ? यानी क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है ? तब तुम देखोगे कि तुम्हारा संदेह मिट रहा है और अहम समाप्त हो रहा है।'

सच यह है कि सीतारमण हो कि सुनक, सब कठपुतली हैं जिनकी डोर मुद्रा और पूंजी का खेल खेलने वाली दुनिया के 3 प्रतिशत ऊपर के लोगों के हाथ में है। खेल भी उनका, मैदान भी उनका, ढलान भी उनका बनाया तो सारा–का–सारा मुनाफा भी उनका। बस, आप कुछ कर सकते हैं तो उनके खेल की कीमत चुका सकते हैं और वह भी डॉलर में! रुपया गिर रहा हो कि डॉलर उठ रहा हो, नतीजा एक ही है कि दुनिया भर के आम आदमी का सर फूट रहा है, कमर टूट रही है। बाजार हंस रहा है और वे अपना मुनाफा संभाले बैंकों की तरफ भागे जा रहे हैं। इससे मनोरम दृश्य भी देखा है कभी ? *(सप्रेस)*

मंत्री की कलम से

नया वर्ष 2023 की हार्दिक शुभकामनाएं! नया साल नये सपने देखने और जीवन को नये साल के लिये कुछ नया संकल्प करने का वक्त है। सत्य–अहिंसा और मूल्यों के सहारे एक–दूसरे से जोड़ने और प्रकृति देश और समाज को बेहतरीन बनाने के लिए हम हमेशा प्रयासरत रहें। मेरा सादर अभिवादन स्वीकार करें।

कटक (ओडिशा) :

5–6 दिसम्बर, 2022 को उत्कल गांधी स्मारक निधि की कार्य समिति की बैठक में भाग लिया। उत्कल गांधी स्मारक निधि का मुख्य केन्द्र गांधी भवन, कटक है। इस बैठक में ओडिशा के अनेकों स्थानों से सदस्य साथी पधारे। उत्कल गांधी स्मारक निधि की अध्यक्षा कृष्णा मोहन्तीजी एक समर्पित वरिष्ठ गांधीवादी हैं। उनकी प्रेरणा और नेतृत्व से गांधी–विचार के कार्य में ओडिशा में निरंतर वृद्धि हो रही है। लगभग हर जिले में आज युवा साथी सक्रिय रूप से जुड़ रहे हैं। इसमें निधि के ट्रस्टी डॉ. विश्वजीत के अथक परिश्रम और लगन से सर्वोदय कार्य को ओडिशा में नई ऊर्जा और गति प्रदान हुई है।

उत्कल गांधी स्मारक निधि के सचिव जयंत दास ने कई नई योजनाओं की जानकारी दी। यहां के भवन में पुस्तकालय, प्रशिक्षण केन्द्र के निर्माण प्रस्तावित हैं, कम्युनिटी रेडियों प्रारंभ करने का भरसक प्रयास किया जा रहा है। आर्थिक कठिनाइयों के कारण कम्युनिटी रेडियो कार्यक्रम प्रारंभ होने में देरी हो रही है। उड़िया भाषा में गांधी साहित्य प्रकाशन का कार्य लगातार जारी है। गांधीजी के लेखों का संग्रह भी शीघ्र प्रकाशित किया जायेगा। इसके साथ ही युवाओं को गांधी–विचार से जोड़ने के लिये युवा प्रशिक्षण शिविर, सम्मेलनों का आयोजन होता रहता है। ओडिशा में गांधी कार्य के लिये उत्कल गांधी स्मारक निधि के साथ राष्ट्रीय युवा संगठन, बाजीराव छात्रावास, सर्वोदय मंडल एवं अन्य अनेक संगठन साथ में कार्य कर रहे हैं। जस्टिस मनोरंजन मोहंती, वरिष्ट पत्रकार सत्य रायजी के सतत सहयोग और मार्ग–दर्शन से यह कार्य और प्रभावी हो रहा है।

सत्यभामापुर (मधुसूदन दास स्मारक)

मधुसूदन दास (मधुबाबू) अधिवक्ता, स्वतंत्रता सेनानी एवं उड़ीसा–आन्दोलन के जनक थे। अंग्रेजी शासन में उड़िया भाषा का अस्तित्व संकट में था। उस समय मधुबाबू के निःस्वार्थ प्रयासों से ओडिशा राज्य को स्वतंत्र रूप से अपना स्वरूप प्राप्त हुआ। उड़िया भाषी लोगों को एकत्रित कर मधुबाबू ने अनेक लेखकों, चिंतकों एवं राजनीतिज्ञों को इस कार्य के लिये प्रेरित किया और अंततः सभी के प्रयासों से 1 अप्रैल, 1936 को स्वतंत्र उड़ीसा प्रदेश का गठन हुआ। परंतु मधुबाबू प्रदेश गठन देखने तक जीवित नहीं रहे। उड़िया भाषा की सुरक्षा एवं स्वतंत्र प्रदेश के लिए मधुबाबू ने "उत्कल सम्मेलनों" की स्थापना की। मधुबाबू देश सेवा में अपनी धन–सम्पत्ति सब कुछ अर्पित कर दिए थे। यहां तक कि वे दिवालिया भी हो गये थे।

मधुबाबू का जन्म ओडिशा के कटक जिले के सत्यभामापुर में हुआ था। ओडिशा प्रवास के दौरान मधुबाबू के गांव जाना हुआ। मधुबाबू की अमिट स्मृति को अक्षुण रखने में गांधी स्मारक निधि की महत्वपूर्ण भूमिका है। ओडिशा की वरिष्ठ गांधीवादी तथा उत्कल गांधी स्मारक निधि की अध्यक्षा कृष्णा मोहंतीजी ने बताया कि मधुबाबू के घर–जमीन की बिक्री होने जा रही थी, उस समय ओडिशा की गांधीवादी स्वर्गीय रमादेवी के कहने पर गांधी स्मारक निधि (केन्द्रीय) ने मधुबाबू की स्मृति को सुरक्षित करने के लिए उनके मकान–घर को 10,000 रूपये में क्रय किया और उसके पश्चात वहां उनकी स्मृति को संरक्षित किया जा रहा है। एक प्रदर्शनी भी यहां लगाई गई। उनकी मिट्टी के मकान तथा अन्य भवनों को सुरक्षित रखा गया है। यहां दर्शनार्थी आते रहते हैं। डॉ. विश्वजीत ने बताया कि महात्मा गांधी इस गांव में पधारे थे और एक रात्रि मधुबाबू के मकान की छत पर ही शयन किया था। यहां कस्तूरबा ट्रस्ट की वरिष्ठ कार्यकर्ता सन्धारानी मल्लिक के नेतृत्व में जरूरतमंद बालिकाओं की शिक्षा के लिये अनेकों गतिविधियां भी संचालित हो रही हैं। इस प्रवास के दौरान जस्टिस मनोरंजन मोहन्ती भी उपस्थित रहे। उन्होंने मधुबाबू की जीवन यात्रा के संबंध में विस्तृत परिचय कराया। हमारे युवा साथी मानसभाई ने पूरी यात्रा की बेहतरीन व्यवस्था की। ओडिशा के सभी वरिष्ठ और युवा साथियों के आत्मीय और प्रेमपूर्ण स्वागत से अभिभूत रहा। सभी का हृदय से आभार। – *संजय सिंह*

प्रकाशन तिथि 28 / 12 / 2022
Delhi Postal Regd. No. DL (C)-05/1423/2022-2024
R.No.21841/1971 Posted at L.P.C.- Delhi. R.M.S.Delhi-6 on 1st, 2nd January, 2023
संस्थाकुल, जनवरी, 2023

पुण्य स्मरण

तुषार बाबू : आप हमेशा याद आयेंगे

डॉ. विश्वजीत

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने साम्प्रदायिकता की आग बुझाते हुए अपना जीवन न्योछावर कर दिया। हम मानते हैं कि जो गांधी के अनुगामी हैं, उनका नैतिक दायित्त्व है कि गांधीजी के इस काम को आगे बढ़ायें और साम्प्रदायिकता के खिलाफ संघर्ष करें। तुषार बाबू अपने क्षेत्र में इसके लिए सदा प्रस्तुत रहते थे। केन्द्र सरकार जिस समय एन. आर. सी., सी. ए. ए. कानून लाई, उस समय भद्रक के अल्पसंख्यकों का साहस बढ़ाने में वे सबसे आगे रहे। सन् 2017 में उनके घर के पास घटी एक साम्प्रदायिक विद्वेष की घटना का समाधान व्यक्तिगत रूप से करने में वे असफल रहे थे। लेकिन इस घटना ने उन्हें समाज में साम्प्रदायिक सद्भाव कायम रखने के लिए संगठन बनाने की प्रेरणा दी। उन्हीं दिनों उत्कल गांधी स्मारक निधि और राष्ट्रीय युवा संगठन के साथियों ने कर्फ्यू के समय ओडिशा गांधी–बालाश्रम में पड़ाव डालकर शांति स्थापित करने की कोशिश की। ओडिशा गांधी–बालाश्रम में आयोजित सभा में ही उनके साथ मेरी पहली मुलाकात हुई थी। इस मुलाकात के बाद वे हमारे साथ जुड़ गए। ढाई महीने में भद्रक की हर बस्ती में शांति सद्भावना समिति गठित करने के लिए सभाएं आयोजित की गईं। बाजी राउत छात्रावास के छात्रों, अनेक वरिष्ठ नागरिकों, गांधीजनों ने इस काम में सहयोग दिया।

तुषार बाबू केवल भद्रक ही नहीं बल्कि ओडिशा के नामचीन वकील थे। गांधी शांति प्रतिष्ठान का भद्रक केन्द्र उन्होंने अपने पुरुषार्थ से खड़ा किया। किसी पद का लोभ उन्हें नहीं था। मेरी जिद के कारण ही उन्होंने केन्द्र के सेक्रेटरी की जिम्मेदारी स्वीकार की थी। उनके नेतृत्व में कुछ ही वर्षों में जो काम हुए, वे भद्रक जिले के इतिहास में दर्ज होंगे। अपने भद्रक प्रवास के दौरान गांधीजी ने जिस मैदान में सभा की थी, उसी गांधी–मैदान में कुछ निहित स्वार्थी तत्वों द्वारा राम मंदिर निर्माण के प्रयास का उन्होंने विरोध किया। गांधीजी के भद्रक–प्रवास की शतवार्षिकी का आयोजन तुषार बाबू के नेतृत्व में किया गया था। उनके अथक प्रयास से ही एक विशाल पदयात्रा और एक भव्य सभा आयोजित हो पाई थी।

तुषार बाबू ने साम्प्रदायिक सदभाव बनाने के साथ लोगों को स्वावलंबी बनाने के लिए भी अनेक प्रयास किये, ताकि लोग सरकार के आगे हाथ न फैलाएं और स्वतंत्र विचार और स्वतंत्र चिंतन के साथ आगे बढ़ें। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए तुषार बाबू के सेवाग्राम आश्रम जाकर खादी–ग्रामोद्योग के संचालन के विशेष सूत्र लेकर आए थे। उनकी इच्छा थी कि सेवाग्राम आश्रम से प्रेरणा लेकर अपनी धरती में एक खादी केन्द्र स्थापित करें और भद्रक के लोगों को स्वावलंबी बनाएं। कताई–बुनाई के यंत्र खरीदने के लिए उन्होंने धन–संग्रह करना आरम्भ कर दिया था।

युवा शक्ति को गांधी–विचार के साथ जोड़ने के लिए वे प्रति वर्ष राष्ट्रीय युवा शिविर आयोजित करते रहे, जिसमें भद्रक जिले के विभिन्न कालेजों के छात्र भाग लेते थे। राष्ट्रीय युवा संगठन की इकाई का गठन कर वे युवकों को गांधी–विचार से जोड़ने के प्रयास कर रहे थे। गांधी शांति प्रतिष्ठान का भद्रक केंद्र सबसे नया है, तो भी यह शाखा इतनी सक्रिय और व्यापक विचार आधारित काम करती रही है कि राष्ट्रीय सम्मेलन, दिल्ली में इस केंद्र को सर्वश्रेष्ठ केंद्र का सम्मान मिला था।

तुषार बाबू अपने व्यक्तिगत जीवन में गांधी–विचार के सच्चे अनुयाई थे। अपने एक रिश्तेदार के घर भोज में दलितों के लिए अलग पंगत की व्यवस्था देख उन्होंने विरोध किया और बात न मानने पर वहां से सपरिवार लौट आये थे। देश–दुनिया में गांधीवादी तो लगातार बढ़ रहे हैं किन्तु गांधी–विचार को व्यक्तिगत जीवन में उतारने वाले लोग बहुत कम हैं। तुषार बाबू जैसे लोग दुर्लभ है। उनका जाना गांधी–विचार–परिवार के लिए एक गहरी क्षति है। तुषार बाबू हमेशा याद आयेंगे !

स्वामी गांधी स्मारक निधि के लिए राजघाट, नई दिल्ली–110002 से संजय सिंह, गांधी स्मारक निधि द्वारा प्रकाशित व मुद्रित

जैन ऑफसेट प्रिंटर्स, 198 / 2–1, फारचुन टावर, रमेश मार्केट, नई दिल्ली–110065
सम्पादक – रामचन्द्र राही